

## श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 2 अध्याय 10: भागवत के दस लक्षण

13 September 2026

### 🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

### 🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



श्रीशुकदेव गोस्वामी भागवत के दस लक्षणों का उल्लेख करते हैं और फिर उन्हें संक्षेप में प्रकट करते हैं, यह वर्णन करते हुए कि किस प्रकार वह एक विराट् पुरुष — आदि जल में आश्रय ढूँढते हुए — ने प्रत्येक इन्द्रिय, अंग और लोक को उत्पन्न किया, जिससे द्वितीय स्कन्ध का समापन होता है और विदुर तथा मैत्रेय की कथा का मार्ग खुलता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। अब हम द्वितीय स्कन्ध के दसवें और अन्तिम अध्याय पर पहुँचते हैं — एक ऐसा अध्याय जो मानो स्वयं शास्त्र द्वारा उच्चारित एक विषय-सूची की भाँति कार्य करता है। श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को अपना प्रवचन जारी रखते हुए, कथा-प्रवाह को थोड़ी देर के लिए रोककर उन दस आवश्यक विषयों का नामोल्लेख करते हैं जिनका सम्पूर्ण भागवत पुराण आगामी ग्यारह स्कन्धों में विस्तार करेगा। इन्हें नामित करने के पश्चात्, वे एक अद्भुत कार्य करते हैं: दसवें और सर्वोच्च विषय, आश्रय — समस्त अस्तित्व के परम आश्रय — को मात्र एक अमूर्त सिद्धान्त के रूप में न छोड़कर, वे शेष अध्याय में यह स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि किस प्रकार वह एक परम सत्ता, सृष्टि के प्रभात में आदिम जल में अकेली, उन्हीं इन्द्रियों, अंगों तथा तत्त्वों को उत्पन्न करती है जो एक ब्रह्माण्ड को सम्भव बनाते हैं। यह अत्यन्त सघन अध्याय है, जो दस संस्कृत शब्दों की एक साधारण सूची से आगे बढ़कर यह पूर्ण विवरण देता है कि नेत्र, कान, हाथ और पैर कैसे अस्तित्व में आए — और यह उपयुक्त रूप से सम्पूर्ण द्वितीय स्कन्ध का समापन करता है, कथा की बागडोर तीर्थयात्री विदुर के विषय में शौनक के प्रश्न को सौंपते हुए, जो हमें तृतीय स्कन्ध के आरम्भ तक ले जाएगी।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 2 (द्वितीय स्कन्ध)
- अध्याय: 10 (दशम अध्याय) — द्वितीय स्कन्ध का अन्तिम अध्याय
- अध्याय-शीर्षक: भागवत के दस लक्षण (गीता प्रेस का अध्याय-शीर्षक); “विराट् पुरुष के अंगों की संरचना” (गीता प्रेस की समापन-पुष्पिका)
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को सम्बोधित करते हुए; बाह्य ढाँचा वही रहता है — सूत गोस्वामी ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य के समुदाय को कथा सुनाते हैं
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित (कथित संवाद के भीतर); ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य के ऋषिगण (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: श्रीशुकदेव द्वारा परीक्षित को दिया गया गंगा-तटीय उपदेश, जो नैमिषारण्य के वन-आश्रम के भीतर कथित है
- मुख्य विषय-वस्तु: भागवत पुराण के दस लक्षण (सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय), तत्पश्चात् आदिम विराट् पुरुष द्वारा ब्रह्माण्ड के तत्त्वों, इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण — और अन्त में, शौनक का प्रश्न जो कथा को विदुर तथा ऋषि मैत्रेय की ओर मोड़ता है
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 2, अध्याय 10, श्लोक 1–51
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

## दस विषयों का उल्लेख

श्रीशुकदेव एक ऐसी सूची से आरम्भ करते हैं जो सम्पूर्ण शास्त्र की एक पाठ्यक्रम-सूची के समान प्रतीत होती है: सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊतियाँ, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, तथा आश्रय — दस विषय, वे कहते हैं, जिनकी भागवत पुराण में पूर्ण चर्चा होगी। वे तुरन्त इस सूची को समझने के विषय में एक शिक्षा जोड़ते हैं: ज्ञानीजन कहते हैं कि इस पुराण में प्रथम नौ विषयों की चर्चा केवल इसलिए की गई है ताकि दसवें तथा अन्तिम विषय, आश्रय — सर्व-आधार परम ब्रह्म — की स्पष्ट धारणा प्रस्तुत हो सके। सृष्टि का प्रत्येक वृत्तान्त, राजाओं की प्रत्येक वंशावली, किसी मनु के शासन की प्रत्येक कथा — अन्ततः श्रोता को उस एक सत्य को समझने में सहायता करने हेतु है जो इन सबका आधार है। श्रीशुकदेव कहते हैं कि यह कभी शास्त्र के प्रत्यक्ष शब्दों से, तो कभी उनके तात्पर्य से निकाला गया है — शास्त्र को पढ़ने के विषय में एक छोटी परन्तु महत्त्वपूर्ण शिक्षा, जो परीक्षित को (और हमें भी) साधन को ही गन्तव्य न समझने की चेतावनी देती है।

श्रीशुक उवाच अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca atra sargo visargaś ca sthānaṁ poṣaṇam ūtayaḥ manvantareśānukathā nirodho muktir āśrayaḥ*

अर्थ: श्रीशुकदेव ने कहा: इस भागवत पुराण में दस विषयों की चर्चा होगी — सृष्टि, उप-सृष्टि, लोकों का पालन, भगवान् की कृपा, कर्म को बाँधने वाली वासनाएँ, मनुओं के बदलते युग, भगवान् तथा उनके भक्तों की पावन कथाएँ, आत्मा का विलय, मुक्ति, तथा परम आश्रय। (श्लोक 1)



श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को भागवत पुराण के दस लक्षणों का नामोल्लेख करते हैं, जिनमें से नौ दसवें — आश्रय, समस्त अस्तित्व के परम आधार — की स्पष्ट दृष्टि की ओर ले जाते हैं (श्लोक 1-2)।

## प्रत्येक विषय को परिभाषा: सर्ग से आश्रय तक

सूची का नामोल्लेख करने के पश्चात्, श्रीशुकदेव अब प्रत्येक शब्द को उस शिक्षक की सूक्ष्मता से परिभाषित करते हैं जो कोई अस्पष्टता शेष नहीं छोड़ना चाहता। सर्ग है भगवान् की इच्छा से प्रकृति के तीनों गुणों के सन्तुलन में विक्षोभ से उत्पन्न — विपरीत क्रम में — स्थूल तथा सूक्ष्म तत्त्वों, इन्द्रियों, कर्म-इन्द्रियों, मन, अहंकार तथा महत्तत्त्व की सृष्टि; विसर्ग है स्वयं ब्रह्मा द्वारा चराचर प्राणियों की तत्पश्चात् की गई सृष्टि। स्थिति है भगवान् की वह विजय जिसके द्वारा जीव अपनी सीमाओं में बने रहते हैं; पोषण है भगवान् की अपने भक्तों के प्रति कृपा। विभिन्न मन्वन्तरों के अधिष्ठाता पुण्यात्मा मनुओं के सदाचरण को मन्वन्तर के नाम से जाना जाता है, जबकि प्राणियों की वे प्रच्छन्न वासनाएँ जो सकाम कर्म के द्वारा उन्हें बन्धन में डालती हैं, ऊतियाँ कहलाती हैं। भगवान् के विभिन्न अवतारों तथा उनके साधु-भक्तों के जीवन-वृत्तान्त, अन्य सम्बद्ध कथाओं सहित, ईशानुकथा कहलाते हैं। निरोध है जीवात्मा का अपने सभी उपाधियों सहित भगवान् में — उनके योगनिद्रा में जाने के पश्चात् — विलय होना, तथा मुक्ति वह मोक्ष है जो तब प्राप्त होता है जब जीव अपनी मानी हुई पहचान (कर्तृत्व आदि) त्यागकर अपने सच्चे स्वरूप (ब्रह्मत्व) को प्राप्त करता है। और अन्ततः, आश्रय वह है जिससे सृष्टि, पालन तथा प्रलय उत्पन्न होते जाने जाते हैं — शास्त्रों में जिसे परम ब्रह्म, परम आत्मा कहा गया है। श्रीशुकदेव इस भाग को एक सूक्ष्म तार्किक प्रमाण के साथ समाप्त करते हैं: अनुभव करने वाली आत्मा, इन्द्रियाँ, तथा उन इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता — एक-दूसरे के बिना नहीं जाने जा सकते, अतः जो इन तीनों को जानता तथा धारण करता है, वही सच्चा आश्रय है — एक ऐसा आधार जिसे स्वयं के अतिरिक्त किसी अन्य आधार की आवश्यकता नहीं।

## विराट् पुरुष आश्रय की खोज में

परिभाषाएँ पूर्ण होने के पश्चात्, श्रीशुकदेव दसवें विषय को साक्षात् दर्शाने की ओर मुड़ते हैं, और अध्याय दर्शनशास्त्र से जीवन्त कथा की ओर मुड़ जाता है। जब विराट् पुरुष अण्डाकार ब्रह्माण्ड से बाहर निकले और अलग खड़े हुए, तो उन्होंने आश्रय की खोज की, और अपने शुद्ध संकल्प से उन्होंने पवित्र जल की रचना की। चूँकि ये जल उन्हीं से — जो ‘नर’ भी कहलाते हैं — उत्पन्न हुए, ये स्वयं ‘नार’ कहलाए; और चूँकि भगवान् अपने ही रचे इन जलों पर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक निवास करते रहे, वे ‘नारायण’, “नार में निवास करने वाले”, के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीशुकदेव यहाँ एक विशेष बात जोड़ते हैं: ब्रह्माण्ड के स्थूल तत्त्व, कर्म, काल, तथा प्रकृति एवं जीवों की परिवर्तनशीलता — ये सब केवल उन्हीं की कृपा से विद्यमान हैं, और जिस क्षण वे इनके प्रति उदासीन हो जाएँ, ये तुरन्त लुप्त हो जाएँगे। यह कोई दूरस्थ, असंलग्न सृष्टिकर्ता नहीं, अपितु एक ऐसी सत्ता है जिसका निरन्तर ध्यान ही सृष्टि को बनाए रखने वाला एकमात्र आधार है।

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।

यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥

*dravyaṁ karma ca kālāś ca svabhāvo jīva eva ca yad-anugrahataḥ santi na santi yad-upekṣayā*

अर्थ: पदार्थ, कर्म, काल, प्रकृति के स्वभाव, तथा वे जीव जो इनका उपभोग करते हैं — ये सब केवल इसलिए विद्यमान हैं क्योंकि भगवान् इन पर अपनी कृपा-दृष्टि रखते हैं; जिस क्षण वे उदासीन हो जाएँ, ये सब तुरन्त लुप्त हो जाएँगे। (श्लोक 12)



विराट् पुरुष, ब्रह्माण्ड के अण्ड से निकलने के पश्चात् अकेले, आदिम जल की रचना करते हैं और एक सहस्र दिव्य वर्षों तक उन पर निवास करते हैं, "जल में निवास करने वाले" नारायण के नाम से प्रसिद्ध होते हुए (श्लोक 10-12)।

## जागरण: प्राण, इन्द्रियाँ, तथा शरीर के तत्त्व

श्रीशुकदेव तत्पश्चात् वर्णन करते हैं कि किस प्रकार, अपने योगनिद्रा से जागकर, वह भगवान् — जो तब तक सर्वथा अकेले थे — स्वयं को बहु-रूप करने की इच्छा करते हैं, और अपनी माया से अपने तेजोमय बीज-शरीर को तीन भागों में विभक्त करते हैं: अधिदैव, दैवी पक्ष; अध्यात्म, व्यष्टि आत्मा; तथा अधिभूत, भौतिक जगत्। इसके पश्चात् आता है सम्पूर्ण भागवत के सर्वाधिक उल्लेखनीय अंशों में से एक: यह वर्णन कि किस प्रकार एक शरीर — कोई भी शरीर, और विस्तार से स्वयं ब्रह्माण्ड का शरीर — अंग-प्रत्यंग, इन्द्रिय-प्रत्येन्द्रिय अस्तित्व में आता है। विराट् पुरुष के शरीर के भीतर के आकाश से इन्द्रियों की, संकल्प-शक्ति की, तथा शरीर-बल की तीव्रता उत्पन्न हुई, और इनसे प्राण उत्पन्न हुआ, समस्त प्राण-वायुओं का प्रमुख। प्राण की गति से प्रेरित होकर, विराट् पुरुष को भूख-प्यास अनुभव हुई, और एक मुख प्रकट हुआ; मुख से तालु आया तथा रस-इन्द्रिय; बोलने की इच्छा से, उसी मुख से अग्नि-देव तथा वाक्-इन्द्रिय प्रकट हुए। सूँघने की इच्छा से नासिका का जोड़ा प्रकट हुआ, वायु-देव के साथ जो उस इन्द्रिय के अधिष्ठाता हैं; अन्धकार में देखने की इच्छा से नेत्रों का जोड़ा प्रकट हुआ, सूर्य-देव के साथ। जब वेदों ने अपने स्तोत्रों से उन्हें जगाने का प्रयास किया, तब सुनने की इच्छा से कानों का जोड़ा प्रकट हुआ, दिशाओं के देवताओं के साथ। उष्णता-शीतलता, कोमलता-कठोरता अनुभव करने की इच्छा से त्वचा प्रकट हुई, और उस पर रोम तथा स्पर्श के अधिष्ठाता वायु-देव।



आदिम विराट् पुरुष में मुख, नेत्र, कान तथा त्वचा एक-एक करके प्रकट होते हैं, जैसे-जैसे प्रत्येक इन्द्रिय की इच्छा होती है — रस, दृष्टि, श्रवण, तथा स्पर्श, प्रत्येक अपने-अपने अधिष्ठाता देवता के साथ आते हुए (श्लोक 17-23)।

## हाथ, पैर, तथा कर्म-इन्द्रियाँ

वृत्तान्त कर्म-इन्द्रियों के साथ आगे बढ़ता है। कर्म करने की इच्छा से, विराट् पुरुष से हाथों का जोड़ा निकला, ग्रहण-शक्ति के साथ तथा इन्द्र देव, जो इसके अधिष्ठाता हैं; स्वतन्त्र गति की इच्छा से पैरों का जोड़ा प्रकट हुआ, भगवान् विष्णु के साथ, उनके अधिष्ठाता देवता, तथा गमन-शक्ति के साथ जिससे प्राणी यज्ञ-सामग्री एकत्र करते हैं। सन्तान, कामसुख तथा पवित्र गृहस्थ जीवन के सुखों की लालसा से जनन-इन्द्रिय प्रकट हुई, प्रजापति देव के साथ; मल-त्याग की आवश्यकता अनुभव होने पर गुदा प्रकट हुई, मित्र देव के साथ। एक शरीर से दूसरे में जाने की इच्छा से नाभि प्रकट हुई, तथा उसमें अपान नामक प्राण-वायु, मृत्यु के देवता के साथ — क्योंकि प्राण का अपान से पृथक् होना ही मृत्यु है। अन्त में, खाने-पीने की इच्छा से उदर-कोष्ठ, आँतें, तथा शिराओं-धमनियों का जाल प्रकट हुआ, समुद्रों तथा नदियों के साथ, जिनसे तृप्ति तथा पोषण उत्पन्न हुए; और अपनी माया पर चिन्तन करने की इच्छा से हृदय प्रकट हुआ, तथा उसमें मन, चन्द्र देव के साथ, तथा मन के दो कार्य — संकल्प तथा इच्छा।

श्रीशुकदेव तत्पश्चात् शारीरिक विवरण को समेटते हैं: पृथ्वी, जल तथा अग्नि से विराट् पुरुष के शरीर के सात घटक उत्पन्न हुए — बाह्य स्थूल त्वचा, आन्तरिक सूक्ष्म त्वचा, माँस, रक्त, मेद, मज्जा तथा अस्थि — जबकि आकाश, जल तथा वायु से उनका प्राण उत्पन्न हुआ। इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर उन्मुख हैं, तथा इन्द्रिय-विषय स्वयं अहंकार से जन्मे हैं; मन समस्त विकारों का आधार है, जबकि बुद्धि ही सभी वस्तुओं की यथार्थता को प्रकट करती है। यह सम्पूर्ण स्थूल शरीर, श्रीशुकदेव कहते हैं, आठ आवरणों से घिरा है — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, तथा प्रकृति — और इससे परे भगवान् का वह अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप है: अव्यक्त, निर्गुण, बिना आदि, मध्य अथवा अन्त के, नित्य, तथा मन तथा वाणी की पहुँच से पूर्णतः परे।



ग्रहण के लिए हाथ, गमन के लिए पैर, तथा चिन्तन के लिए हृदय — विराट् पुरुष से प्रकट होते हैं, प्रत्येक अपने अधिष्ठाता देवता सहित — इन्द्र, विष्णु, तथा चन्द्र देव इनमें सम्मिलित हैं (श्लोक 24-30)।

## माया, सृष्टि की सूची, तथा वर्णन से परे भगवान्

श्रीशुकदेव एक महत्त्वपूर्ण योग्यता जोड़ना नहीं भूलते: सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों स्वरूप, जिनका उन्होंने अभी वर्णन किया, स्वयं भगवान् की माया की रचनाएँ हैं, और इसीलिए ज्ञानीजन इनमें से किसी को भी भगवान् के स्थान पर पूजा का विषय नहीं बनाते।

अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ।

उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥ ३५ ॥

*amunī bhagavad-rūpe mayā te hy anuvārṇite ubhe api na grhṇanti māyā-sṛṣṭe vipaścitaḥ*

अर्थ: अभी वर्णित भगवान् के ये दोनों स्वरूप — स्थूल विराट् रूप तथा सूक्ष्म अव्यक्त रूप — दोनों ही उनकी माया की रचनाएँ हैं; जो लोग उन्हें वस्तुतः जानते हैं, वे इनमें से किसी को भी अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। (श्लोक 35)

परमात्मा वस्तुतः पूर्णतः अकर्ता है; यह केवल अपनी माया के द्वारा है कि वे सक्रिय प्रतीत होते हैं, ब्रह्मा के रूप में स्वयं को शब्द तथा शब्द के अर्थ दोनों के रूप में प्रकट करते हुए, असंख्य नाम, रूप तथा क्रिया का विकास करते हुए। इसके पश्चात् आती है एक विस्तृत सूची — प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितृगण की विभिन्न श्रेणियाँ, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, किन्नर, अप्सराएँ, नाग तथा सर्प, राक्षस तथा एक दर्जन अन्य प्रकार के भूत-प्रेत, पक्षी, पशु, सरीसृप, वृक्ष तथा पर्वत — ब्रह्माण्ड में विद्यमान प्रत्येक नाम तथा रूप, श्रीशुकदेव परीक्षित से कहते हैं, उन्हीं का है। अण्डज, जरायुज, स्वेदज अथवा मिट्टी से उत्पन्न, जल में, थल पर, अथवा आकाश में निवास करने वाला प्रत्येक अन्य प्राणी, अपने पूर्व-कर्मों के शुभ, अशुभ अथवा मिश्रित फल का परिणाम है, तथा सत्त्व, रज अथवा तम की प्रधानता देवता, मनुष्य, अथवा नरक तथा पशु-योनि के निवासी के रूप में जन्म निर्धारित करती है — इनमें से प्रत्येक भाग्य आगे भी इस अनुसार विभाजित है कि गुण एक-दूसरे को किस प्रकार आच्छादित करते हैं।



विष्णु रूप में, भगवान् अपने द्वारा निर्मित ब्रह्माण्ड का पालन करते हैं; रुद्र रूप में, नियत समय पर, वे उसे उतनी ही सरलता से विलीन कर देते हैं जितनी सरलता से एक झोंका बादलों के समूह को उड़ा देता है (श्लोक 42-43)।

विश्व की रक्षा तथा पालन के लिए विष्णु का रूप धारण कर, भगवान् बार-बार पशु, मनुष्य तथा देवता के रूप में प्रकट होकर ब्रह्माण्ड की रक्षा तथा पालन करते हैं; और जब समय आता है, वे प्रलय की अग्नि से रुद्र के रूप में प्रकट होते हैं और उस ब्रह्माण्ड को विलीन कर देते हैं जिसे उन्होंने स्वयं रचा था, जितनी सरलता से एक झोंका बादलों के समूह को उड़ा देता है।

ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः ।

संनियच्छति तत् काले घनानीकमिवानिलः ॥ ४३ ॥

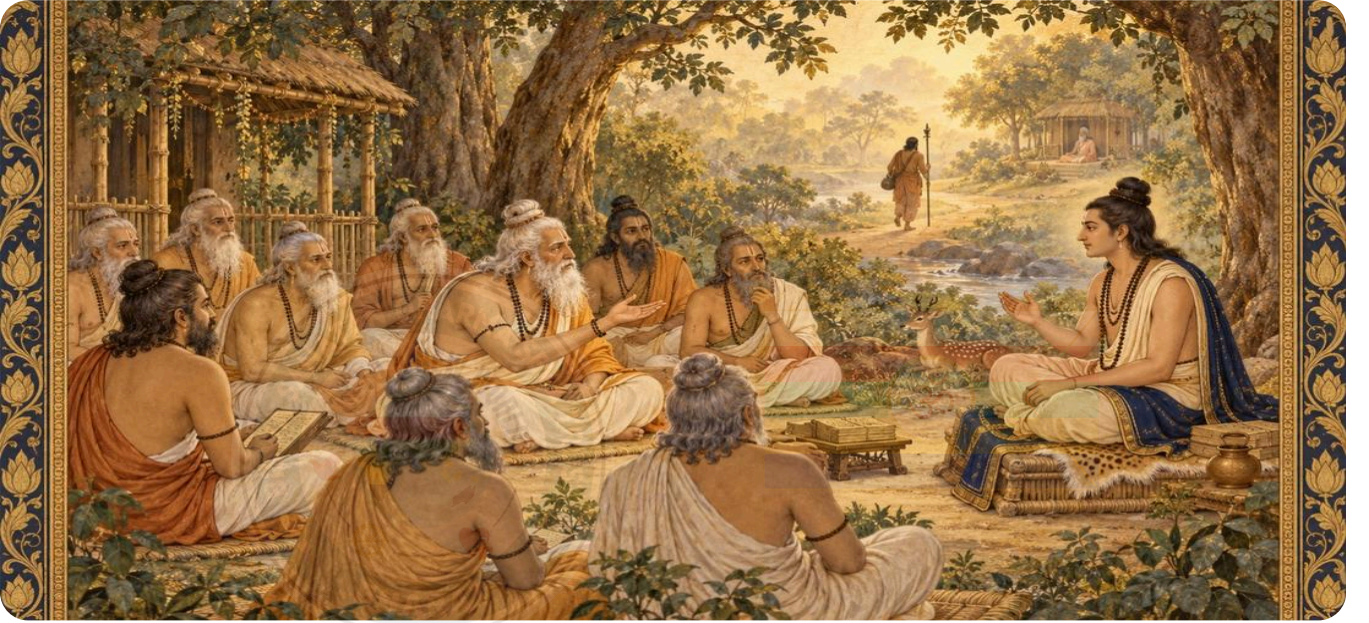
*tataḥ kālāgni-rudrātmā yat sṛṣṭam idam ātmanaḥ sanniyacchati tat kāle ghanānīkam ivānilaḥ*

अर्थ: तत्पश्चात्, काल की अग्निस्वरूप रुद्र के रूप में, वे नियत समय पर अपनी ही रची हुई सम्पूर्ण सृष्टि को अपने भीतर समेट लेते हैं — उतनी ही सहजता से जितनी सहजता से वायु बादलों के समूह को तितर-बितर कर देती है। (श्लोक 43)

तथापि श्रीशुकदेव आग्रह करते हैं कि यह त्रिविध वर्णन — सृष्टिकर्ता, पालक, संहारक — सम्पूर्ण सत्य नहीं समझा जाना चाहिए: भगवान् इससे भी परे हैं। परमात्मा को ब्रह्माण्ड की गतिविधियों में वास्तविक कर्तृत्व नहीं है; श्रुति-वाक्य उन्हें कर्तृत्व केवल इसलिए आरोपित करते हैं ताकि अन्ततः उसका खण्डन किया जा सके, क्योंकि यह केवल माया द्वारा उन पर आरोपित किया गया है। श्रीशुकदेव इस दीर्घ शिक्षा को यह कहते हुए समाप्त करते हैं कि उन्होंने परीक्षित को ब्रह्मा के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित महाकल्प तथा अन्य छोटे कल्पों का वर्णन कर दिया है, और आगे चलकर तृतीय स्कन्ध में काल के मापों का पूर्ण विवरण देने का वचन देते हैं — किन्तु अभी, वे कहते हैं, वे पद्म कल्प की कथा की ओर मुड़ेंगे।

## शौनक का प्रश्न तथा विदुर को ओर मोड़

यहीं पर कथा का ढाँचा बदलता है, और हमें स्मरण होता है कि यह सब सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य के समुदाय को सुनाया गया है। शौनक बोल पड़ते हैं: पहले, वे कहते हैं, सूतजी ने उन्हें बताया था कि विदुर — भगवान् के भक्तों में अग्रगण्य — ने अपने कुटुम्बियों को, जिन्हें त्यागना अत्यन्त कठिन था, त्यागकर पृथ्वी के समस्त पवित्र तीर्थों की पैदल यात्रा की थी। शौनक अब पूछते हैं: विदुर की कुशारु-पुत्र ऋषि मैत्रेय से आध्यात्मिक विषयों पर वार्ता कहाँ हुई, तथा उस पूज्य ऋषि ने विदुर के प्रश्नों के उत्तर में क्या सत्य सिखाया? हमें विदुर की सम्पूर्ण कथा बताइए, हे कोमल सूतजी — उनके अपने कुटुम्बियों को त्यागने की परिस्थितियाँ, तथा वह क्या था जो अन्ततः उन्हें पुनः घर लौटा लाया। सूतजी का संक्षिप्त उत्तर अध्याय को समाप्त करता है: राजा परीक्षित ने भी यही प्रश्न पूछा था, वे कहते हैं, और अब वे ऋषियों को वह प्रवचन सुनाने जा रहे हैं जो महर्षि शुकदेव ने राजा के प्रश्नों के उत्तर में दिया था।



ऋषि शौनक सूत गोस्वामी से विदुर की तीर्थयात्रा तथा ऋषि मैत्रेय से उनकी भेंट के विषय में पूछते हैं, जिससे द्वितीय स्कन्ध का समापन होता है और कथा तृतीय स्कन्ध के आरम्भ की ओर मुड़ जाती है (श्लोक 48-51)।

## इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. शास्त्र की एक संरचना है, और वह एक उद्देश्य पूरा करती है। सृष्टि, पालन तथा ब्रह्माण्डीय इतिहास के नौ विषय स्वयं में साध्य नहीं हैं; वे श्रोता को आश्रय — उस एक सत्य जो सबका आधार है — की स्पष्ट धारणा तक ले जाने के लिए हैं (श्लोक 1-2)।
2. अस्तित्व स्वयं उनकी कृपा-दृष्टि पर टिका है। सम्पूर्ण सृष्टि — पदार्थ से लेकर काल तक, और स्वयं जीवात्माओं तक — भगवान् की निरन्तर अनुकम्पा के सहारे ही बनी रहती है; उनका ध्यान भर हट जाना इस सबको पल भर में असत् बना देगा (श्लोक 12)।
3. हमारी प्रत्येक इन्द्रिय एक इच्छा से उत्पन्न हुई, कृपा से पूर्ण हुई। दृष्टि, श्रवण, रस, स्पर्श, वाणी तथा गति — ये केवल यूँ ही प्रकट नहीं हुई — प्रत्येक विराट् पुरुष की एक इच्छा से पुकारी गई तथा तुरन्त पूर्ण हुई, प्रत्येक अपने अधिष्ठाता देवता के साथ — एक ऐसा प्रतिमान जो मानव शरीर की पवित्रता को मौन रूप से सम्मानित करता है (श्लोक 15-30)।

4. न स्थूल न सूक्ष्म रूप — कोई भी भगवान् का सम्पूर्ण सत्य नहीं है। दोनों उनकी माया की रचनाएँ हैं; ज्ञानीजन सबसे भव्य ब्रह्माण्डीय रूप से भी परे उस अकर्ता सत्य की ओर देखते हैं जो रूप तथा अरूप दोनों से परे है (श्लोक 33-36)।

5. सृष्टि, पालन तथा संहार एक ही भगवान् की लीला है, तीन भिन्न शक्तियाँ नहीं। विष्णु के रूप में वे पालन करते हैं, रुद्र के रूप में वे संहार करते हैं — फिर भी वे इस त्रिविध वर्णन से भी परे रहते हैं, किसी सच्चे कर्तृत्व से अस्पृष्ट (श्लोक 42-45)।

6. सबसे विराट् ब्रह्माण्डीय शिक्षा भी एक साधारण मानवीय कथा में समाप्त होती है। अस्तित्व की संरचना को परिभाषित करने के पश्चात्, यह अध्याय अधिक दर्शनशास्त्र से नहीं, अपितु एक भक्त की यात्रा के विषय में एक पुत्र के प्रश्न से समाप्त होता है — यह स्मरण कराते हुए कि शास्त्र के सर्वोच्च सत्य सदैव भक्ति की वास्तविक, व्यक्तिगत कथाओं की सेवा में हैं (श्लोक 48-51)।

## एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के आगे बढ़ने के ढंग में कुछ अत्यन्त कोमल है। यह उच्चतम सम्भव ऊँचाई से आरम्भ होता है — सम्पूर्ण शास्त्र को संगठित करने के लिए दस अमूर्त श्रेणियाँ — और फिर, वहीं रुकने के बजाय, यह पूर्णतः शरीर के भीतर तक उतरता है: एक मुख, नेत्रों का जोड़ा, धड़कता हृदय, कुछ ग्रहण करने के लिए बढ़ा हुआ हाथ। मानो श्रीशुकदेव परीक्षित को, और हमें भी, यह समझाना चाहते हैं कि सर्वोच्च दर्शन तथा उगते सूर्य को देखने या किसी प्रिय के हाथ को थामने का सर्वाधिक साधारण कार्य — अन्ततः दो भिन्न विषय नहीं हैं। जो इच्छा सर्वप्रथम विराट् पुरुष में जल में आश्रय ढूँढते समय जागी थी, वही, मन्द किन्तु सच्चे रूप में, आज हमारे भीतर उठने वाली प्रत्येक इच्छा में प्रतिध्वनित होती है। और उतना ही आश्चर्यजनक रूप से, इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय रचना के पश्चात्, यह अध्याय किसी सिद्धान्त-प्रदर्शन से समाप्त नहीं होता — यह शौनक की उस साधारण, मानवीय जिज्ञासा से समाप्त होता है, विदुर नामक एक भक्त के विषय में, जो सत्य की खोज में अपने सम्पूर्ण संसार को त्यागकर चल पड़े थे। सम्भवतः यही इस अध्याय की मौन शिक्षा है: कि सृष्टि का सबसे भव्य वृत्तान्त तथा एक भक्त की तीर्थयात्रा की सबसे छोटी, अत्यन्त व्यक्तिगत कथा — दोनों उसी एक शास्त्र से सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि दोनों उसी एक भगवान् से सम्बन्ध रखते हैं।

## एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपनी किसी एक इन्द्रिय के साथ कुछ क्षण धीमे बिताइए — सम्भवतः दृष्टि, श्रवण, अथवा स्पर्श की साधारण अनुभूति। जब आप देखें, सुनें, अथवा अनुभव करें, स्मरण कीजिए कि इस अध्याय में इसी इन्द्रिय का वर्णन आदिम विराट् पुरुष के भीतर एक इच्छा से उत्पन्न, कृपा से तुरन्त पूर्ण, तथा आज भी उस अधिष्ठाता देवता द्वारा शासित बताया गया है जो स्वयं उसी भगवान् का एक रूप है। देखने अथवा सुनने के साधारण कार्य को, कुछ श्वासों के लिए, आदत के बजाय स्मरण का कार्य बनने दीजिए — यह स्मरण करते हुए कि शरीर स्वयं एक छोटा ब्रह्माण्ड है, तथा उसका आश्रय वही एक है जो सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। समापन में धीरे-धीरे कुछ बार दोहराइए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।”

## उपसंहार

द्वितीय स्कन्ध का दसवाँ अध्याय इस स्कन्ध के भगवान् तथा ब्रह्माण्ड की प्रकृति सम्बन्धी विराट् चिन्तन का एक उपयुक्त समापन लाता है। इस स्कन्ध का आरम्भ विराट् रूप के दर्शन तथा ब्रह्मा द्वारा भगवान् के लीला-अवतारों की स्वयं की सूची से हुआ था, और अब भागवत हमें वही ढाँचा — दस लक्षण — सौंपता है जिससे सम्पूर्ण शास्त्र अपनी शिक्षा को संगठित करता है, तथा फिर उस ढाँचे को अंग-प्रत्यंग, इन्द्रिय-प्रत्येन्द्रिय दिखाकर जीवन्त बनाता है कि किस प्रकार वह एक परम सत्ता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार बनी। इस अध्याय के साथ, श्रीमद्भागवतम् के द्वितीय

स्कन्ध का समापन होता है। विदुर की तीर्थयात्रा तथा ऋषि मैत्रेय से उनकी भेंट के विषय में शौनक का प्रश्न इस स्कन्ध की शिक्षा को समाप्त करता है और तृतीय स्कन्ध का द्वार खोलता है, जो हमें विदुर तथा मैत्रेय की कथा तथा सृष्टि के गहन विस्तार की ओर ले जाएगा जो इसके पश्चात् आता है। यह विराम, दो स्कन्धों के बीच, हम सबके लिए यह अवसर बने कि हम जो कुछ भी सुना है, उसके साथ कुछ क्षण बैठें — पृथ्वी को उठाते वराह से लेकर सम्पूर्ण शास्त्र को साथ बाँधने वाले दस लक्षणों तक — इससे पहले कि हम, विदुर की भाँति, आगे उस अगले गुरु की ओर बढ़ें जो हमें ग्रहण करने के लिए प्रतीक्षारत है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

## संदर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), द्वितीय स्कन्ध, दशम अध्याय, पृष्ठ 127–133।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की प्रतिकृति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-2-chapter-10-ten-characteristic-features-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-2-chapter-10-ten-characteristic-features-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट